संत रैदास की सामाजिक चेतना

डॉ0 शशिकला[1]

भारतीय समाज को नये युग के अनुरूप विचार देने में संत नामदेव, ज्ञानदेव, रामानंद और कबीर ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उसी महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में रैदास ने सर्वस्वीकृत रूप में अपनी विचारधारा को प्रस्तुत किया। उन्होंने तत्कालीन युग में प्रचलित सम्पूर्ण साधना पद्धतियों एवं विचारों का समन्वय करते हुए नवयुग के अनुरूप एक ऐसी विचारधारा एवं पद्धति दिया जिसमें संपुर्ण विचारधारा मिली हुई थी। सामाजिक पुनर्व्यवस्था के उस युग में रैदास की विचाारधारा ने ओज और क्रान्ति पैदा कर दी।

भारतीय ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था ने अत्यन्त प्राचीन समय से अन्त्यजों एवं दलितों को अपने पैरों तले ऐसा रौंदा कि वे मानवीय धरातल पर खड़े होने की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। अपने देश में इस अपमान के साथ ही मध्ययुग में इन तबकों विदेशियों का अत्याचार भी सहना पड़ा। ऐसी अवस्था में इनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई क्योंकि वे न तो हिन्दू धर्म के अंग ही रह गये और न ही उनकी सामाजिक चेतना ही विकसित हो सकी। विदेशियों ने इसका अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहा किन्तु एकमात्र संतों की संगति के कारण भैतिक एवं लौकिक सुख समृद्धि इन्हें आकर्षित न कर सकी और इस कड़ी के सबसे महत्वपूर्ण सितारे थे–संत रैदास।

संत रैदास के जीवन की सबसे बड़ी विशेषता थी कि वे अपने को चमार जाति में पैदा होने को लेकर कभी कुंठित नहीं रहे बल्कि डंके की चोट पर अपने चमारत्व को स्वीकार करते हुए जीवन भर उन्होंने नैतिक मूल्यों एवं आदर्शों पर बल दिया। सारे समाज से उपेक्षित होकर भी उपेक्षित न रहे क्योंकि वे एक आस्थावादी संत थे। उन्होंने समाज सुधार के लिए धर्म को आधार बनाया क्योंकि मध्यकाल में सम्पूर्ण सामाजिक ढाँचा ही धर्म की भित्ति पर खड़ा था। अतः कोई भी सामाजिक चेतना लाने के लिए धर्म से अलग नहीं हुआ जा सकता था लेकिन आडम्बरवादी धर्म का उन्होंने विरोध भी किया। आडम्बरवादी ब्राह्मण समाज उनके सामने टिक न सका। कर्मकाण्ड, बाहरी वेषभूषा, तीर्थयात्रा आदि सभी को निम्न कोटि का मानते हुए वे कहते हैं कि यदि कोई मानसिक भाव से संतुष्ट नहीं है तो व्यर्थ है। वे तत्कालीन युग में चले आ रहे धर्म के परंपरागत रूढ़ स्वरूप की स्पष्ट किन्तु शालीन स्वरों में आलोचना करते हुए कहते हैंः

जग में वेद वैद मानी
इनमें और अगत कछु और कहा कौन पर कीजै
भौजल व्याधि असाध प्रबल अति परम पंथ न गहीजै।

तत्कालीन युग में वेद शब्द सामान्य जनता में कर्मकाण्डी पंडितों के दुरुपयोग करने के कारण परंपरावाद तथा व्यर्थ के कर्मकाण्ड का पर्याय–सा हो गया था। रैदास ने तीर्थयात्रा, यज्ञ, आदि कर्मकाण्ड तथा पंडितों द्वारा प्रचारित धर्म पर कटाक्ष कियाः

[1] असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, वसन्त कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी

पांडे कैसी पूज रची रे
अही भरोसे सब जग बूढ़ा सुन पंडित की बात रे।

महात्मा बुद्ध तथा उपनिषदों में भी यज्ञ, अनुष्ठान, कर्मकाण्ड एवं ब्राह्मणों की पूजा को ढ़ोंग बताकर इसके आधार पर मुक्ति न मिलने की बात कही गई है। वे कबीर की तरह ब्राह्मणवादी आडम्बर पर तीखे प्रहार तो नहीं करते किन्तु जिन मधुर एवं मर्मस्पर्शी व्यंग्यों का उन्होंने आश्रय लिया वे संभवतः कबीर के आक्रामक प्रहारों से भी अधिक घातक सिद्ध हुए हैं। वे ईश्वर की पूजा को व्यर्थ बताते हुए कहते हैंः

दूधु त बछरै थनहु बिटारियो
फूलु भवरि जलु मीनि विगारियो
माई गोविन्द पूजा कहा लै चरावउ
अवरु न फूल अनुपु न पावउ।

अर्थात् सम्पूर्ण पूजा की सामग्री को जूठा बताते हुए रैदास ने पूजा की औपचारिकता का सहज और स्वाभाविक विरोध किया है। उन्होंने न केवल बाह्याडम्बर प्रधान औपचारिक पूजा एवं पुजारियों का विरोध किया अपितु अन्यान्य तीर्थों में नहाकर आचरण की दृष्टि से पवित्र प्रयत्नशील सामाजिकों को भी सतर्क किया है। समाज में आचरण का महत्व स्थापित करने के लिए धार्मिक नेताओं पर भी सशक्त प्रहार किया है।

रैदास ने सामाजिक क्षेत्र में जो सबसे बड़ी क्रान्ति की वह युग–युग से चले आने वाले अस्पृश्य जन समाज को उन्होंने नैतिकता का वह सम्बल प्रदान किया जिससे जन–सामान्य के बीच वे खड़े हो सकें। रैदास ने यह सिद्ध कर दिया कि व्यक्ति की सामाजिक गरिमा जन्म से नहीं बल्कि चिंतन, आचरण एवं कर्म से होती है। उन्होंने अपने आचरण एवं कर्म की गरिमा का न केवल उद्घोष किया अपितु उसके माध्यम से अपने जीवन को महिमा मंडित करके मध्ययुगीन सामाजिक चेतना को नवीन दिशा दी।

संतों, चिंतकों तथा बुद्धिजीवियों ने बराबर इस बात की घोषणा की है कि–'नीति विहिन शासन कभी सफल नहीं हो सकता क्योंकि नीति और अध्यात्म सदाचार की जड़ है।' देश की सामाजिक अवनति तथा सामाजिक दुर्व्यवस्था का मुख्य कारण यही है कि आज हम अपनी सांस्कृतिक धरोहर को भूलकर पाश्चात्य चकाचौंध की ओर आकर्षित हो गये हैं। बाह्य आडम्बर और शान–शौकत को ही मुख्य वस्तु मानकर हम अपनी शालीनता, गरिमा तथा जीवन मूल्यों को भूल गये हैं जिसका फल है– पतन, निराशा और दुःख। आज के संसार में सब उल्टा हो रहा है इसलिए हम सत्य का दर्शन नहीं कर पाते। इस संदर्भ में रैदास की कही गई बातें सभी दृष्टियों से प्रासंगिक है।

वैज्ञानिक प्रगति एवं राजनैतिक अशान्ति के इस युग में आज भी संतों की वाणी की आवश्यकता है क्योंकि इनके दिये गये उपदेशों ने मानव–मानव को एकता के सूत्र में बाँधने का विशेष कार्य किया। जिस ज्ञान, धर्म एवं अध्यात्म की चर्चा आज के चिंतक और संत कर रहे हैं वही उद्घोषणा रैदास ने सोलहवीं शताब्दी में की थी। अतः आज भी रैदास साहित्य की उपादेयता बनी हुई है। आज के परिवेश में यह जरूरी है कि इसका प्रसार किया जाय ताकि देश और समाज के लोग इससे लाभान्वित हो सकें। विश्व में शान्ति का प्रचार एवं प्रसार करने में संत रैदास एवं उनके जैसे अन्य संतों ने अपने सम्पूर्ण जीवन को समर्पित कर दिया।

सन्दर्भ सूची

- हिन्दी साहित्य का इतिहास– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
- संत–साहित्य की भूमिका– डॉ0 राजदेव सिंह
- रैदास– धर्मपाल मैनी
- संत रैदास– डॉ0 योगेन्द्र सिंह
- सन्त रैदास– श्रीमती पद्मावती झुनझुनवाला
- हिन्दी साहित्य का इतिहास– डॉ0 नगेन्द्र